E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2024; 6(1): 195-196
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 06-03-2024
Accepted: 09-04-2024

डॉ. अर्चना लोहनी
सहायक प्राध्यापक,
राजनीति विज्ञान विभाग,
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय,
अल्मोड़ा, उत्तराखंड, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अर्चना लोहनी
सहायक प्राध्यापक,
राजनीति विज्ञान विभाग,
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय,
अल्मोड़ा, उत्तराखंड, भारत

समाजवादी आंदोलन का प्रतिबिंब हैं अल्मोड़ा का कुली बेगार आंदोलन

डॉ. अर्चना लोहनी

DOI: https://doi.org/10.33545/26646021.2024.v6.i1c.323

सारांश
कुली बेगार प्रथा उत्तराखण्ड में कत्यूरी शासकों के समय से चली आ रही थी। इस प्रथा में गॉव के लोग राजा व उसके दरबारियों के गॉव में आने पर नि;शुल्क सेवा किया करते थे। यह प्रथा कत्यूरी शासकों से लेकर गोरखा वंश तक इसी प्रकार चलती रही किसी ने इसका खास विरोध नहीं किया। 1815 में कुमाऊॅ कमीश्नरी की स्थापना के बाद दूसरे कुमाऊॅ कमिश्नर विलियम ट्रेल ने इस प्रथा का अस्थाई हल निकालने के लिए सन् 1923 में खच्चर सेना की स्थापना की थीं।
1900 तक स्थानीय लोगों को ब्रिटिशर्स द्वारा चलाए जा रहे निर्माण कार्यो में अपने जरूरी कामों को छोड़कर जाना पड़ता था। इससे लोगों में ब्रिटिशर्स के प्रति भारी रोष था, इसके बावजूद भी वो बहुत अधिक विरोध नहीं पा रहे थें। 21 जुलाई 1903 में अल्मोड़ा के खत्याड़ी गॉव में कुली बेगार प्रथा का प्रत्यक्ष रूप से विरोध किया गया। कुमाऊॅ कमिश्नरी के अन्तर्गत 1916 कुमाऊॅ परिषद का जन्म हुआ। 1920 में चौथे अधिवेशन में हरगोविन्द पंत जी की अध्यक्षता में ये प्रस्ताव लाया गया कि कुली बेगार प्रथा का अंत होना चाहिए।
14 फरवरी 1921 को बद्रीप्रसाद पाण्डे जी के नेतृत्व में 10 हजार लोगों ने कुली बेगार के रजिस्ट्ररों को फाड़ कर सरयू नदी बागेश्वर में बहा दिया। इसके बाद अनौपचारिक रूप से कुली बेगार प्रथा का अंत हुआ। गॉधीजी द्वारा इसे रक्तहीन क्रान्ति का नाम दिया गया। इस आन्दोलन का नेतृत्व करने के कारण बद्रीदत्त पाण्डे को कुमाऊॅ केसरी की उपाधि दी गयी।

कूटशब्दः बेगार, औपनिवेशिक शासक, कुली बर्दायश, कुली उतार

प्रस्तावना
प्राचीन काल से ही बेगारी प्रथा प्रत्येक सामन्ती समाज का हिस्सा रही हैं। औपनिवेशिक शासन व्यवस्था ने अधिकांश सामन्ती व्यवस्थाओं के उपकरणों को ज्यों का त्यों अपना लिया था। 1815 में जब अग्रेजों का कुमाऊॅ में आगमन हुआ तो उन्होने गोरखाओं की तमाम व्यवस्थाओं एवं क्रूरताओं को बनाये रखा। हालॉकि कई दासताओं को समाप्त करने में उदारता अवश्य दिखाई, किन्तु बेगारी जैसी प्रथा को बनाये रखा। बेगारी का सामान्य अभिप्राय जबरन मजदूरी रहित श्रम से था। औपनिवेशिक कुमाऊॅ में इसका अभिप्राय मजदूरी रहित या अल्प मजदूरी देकर कराये गये जबरिया श्रम और जबरन सामग्री लिए जाने की प्रक्रिया से था। बेगार देने के लिए स्थानीय काश्तकारों को बन्दोबस्ती इकरारनामों के अनुसार बाध्य किया जाता था। ये धाराऍ भूमि बन्दोबस्तों में बेगाार को पक्का आधार देने हेतु डाली गयी थी। हर नये बन्दोबस्त के साथ यह प्रथा अधिक शोषक और क्रूर रूप लेती चली गयी। [1] बेगार प्रथा के तीन घटक थे– कुली बेगार, कुली उतार, और कुली बर्दायश । कुली बेगार सम्बोधन ही इन तीनों के लिए सर्वाधिक प्रयोग किया जाने लगा। प्रारम्भ में यह केवल निम्न जातियों से कराया जाता था किन्तु समय के साथ साथ सभी जातियों से कराया जाने लगा।
बेगार प्रथा कुमाऊॅ में औपनिवेशिक काल में लगभग 105 साल तक 1815ई से 1921ई तक जीवित रही। इस प्रथा के विकास की तीन अवस्थाऍ देखी जाती हैं

1. नेपाल युद्व 1815 से प्रथम स्वतंत्रता संग्राम तक 1857 तक।
2. प्रथम स्वंतत्रता संग्राम से 1885 तक।
3. 1885 से 1921 तक।

पहली अवस्था में बेगार प्रथा शुरूवाती दौर में उदार तथा अनुदार नीति से चल कर नियमबद्व हो गयी। दूसरी अवस्था में शोषण पराकाष्ठा के शिखर तक पहुॅच चुका था और तीसरी अवस्था में इसके विरूद्व जन आंदोलन हुए। जन आंदोलन के प्रभाव से संशोधन तथा समझौता और फिर इस व्यवस्था को पूरी तरह खत्म करना पड़ा। इस समय बेगार के विरोध में दो वर्ग थे।

एक वर्ग संशोधन से संतुष्ट होकर बेगार उठाने के पक्षधर थे, किन्तु दूसरा वर्ग बेगार के पूर्ण उन्मूलन का पक्षधर था इनमें समाजवादी नेताओं का प्रभुत्व था।

बेगार – उन्मूलन आंदोलन पहला दौर

अग्रेजों के कुमाऊँ आगमन से प्रथम स्वंतत्रता संग्राम तक कुली बेगार के विरोध में किसी भी प्रकार के जन आंदोलन के प्रमाण नहीं मिलते हैं। हालॉकि इसके कई कारण देखने को मिलते हैं। गोरखाओं के क्रूरतापूर्ण शासन की अपेक्षा अग्रेजी शासन व्यवस्था शुरूवाती दौर में कम क्रूर महसूस हुआ। इसी शासन काल में कुमाऊँ के मध्यकालीन से बन्द पड़े समाज को खोलने का प्रयास किया, किन्तु देश के अन्य हिस्सों में चल रही हलचलों का प्रभाव यहॉ के समाज में स्थानीय भूगोल के कारण कोई प्रचार प्रभाव नहीं हो पाया। अग्रेजी शासकों ने स्थानीय समाज के साथ इस तरह के सम्बन्ध बनाने का प्रयास किए कि प्रारम्भ में बेगार के विरोध में कोई सोच भी नहीं सकता था।

1815–16 ई में नेपाल युद्व के समय कम्पनी सरकार की रसद और कुलियों से मदद करने वाली स्थानीय जनता ने पॉच ही साल के बाद अपने भीतर वह उत्साह शेष नहीं पाया जो प्रारम्भ में अग्रेंजी शासन के प्रति बना था। जॉर्ज विलियम ट्रेल 1816–36 के शासन के अर्न्तगत सामान्यतया स्थानीय जनता सन्तुष्ट थी।[2] ऐसा नही हैं कि इस दौरान बिल्कुल चुप्पी रही हो, कही कही छुटपुट विरोध असहमतियों को छोड़ कर बेगार के विरोध में कभी सामूहिक प्रतिरोध नही देखने को मिलता हैं। सम्भव है कि विरोध प्रतिरोध हुआ हो,पर हम उसके प्रमाण नहीं ढूढ़ सके हैं क्योंकि इस काल में गैर सरकारी अभिलेख उपलब्ध नही है जो तत्कालीन समाज का व्यापक चित्र प्रस्तुत कर सके। 1857 में कुमाऊँ में विद्रोह व असन्तोष के सन्दर्भ देखने को मिलते है किन्तु तत्कालीन कमिश्नर हेनरी रैम्जे ने विद्रोह को दबाने में सफलता प्राप्त कर ली थीं। हालॉकि समाचार पत्रों के प्रकाशन के पश्चात समाचारों पत्रों में बेगार के स्वरूप, कुलियों की दशा,प्रधान पटवारियों के व्यवहार, मजदूरी व बोझ का भार को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती हैं।

बेगार– उन्मूलन आन्दोलन दूसरा दौर

इस दौर में गढ़वाली समाचार पत्र, विशाल कीर्ति जैसे समाचार पत्र बेगार के विरोध में लिखने लगे थे। कुमाऊँ की समस्याओं को हल करने के लिए राजनैतिक और सामाजिक हलचलों और औपनिवेशिक शासन को दमन करने हेतु स्थानीय संगठनों की तीव्रता महसूस हुयी। दूसरा दौर सुधारवादी, नरमपन्थी, समझौतापरस्त चेतना और बेगार में संशोधनों के साथ प्रारम्भ इस चरण का अन्त बेगार के पूर्ण उन्मूलन के लक्ष्य हेतु वातावरण के निर्माण में हुआ। 1916 में कुमाऊँ में राजनीतिक और सामाजिक चेतना के प्रसार प्रचार के लिए कुमाऊँ परिषद की स्थापना की गयी। [3]

बेगार– उन्मूलन आन्दोलन तीसरा दौर

1920 में कुमाऊँ परिषद् के काशीपुर अधिवेशन में सरकार को बेगार उठाने की चेतावनी दी गयी और ऐसा ना करने पर बेगार ना देने का आह्वान किया गया। महात्मा गॉधी से मिलने के बाद यह निर्णय लिया गया कि जनवरी 1921 में मकर संक्रान्ति के अवसर पर बागेश्वर में एकत्रित होकर कुलियों के नाम अंकित रजिस्टरों को सरयू नदी बागेश्वर में बहा दिया जाएगा। 10 जनवरी 1921 को हरगोविन्द पन्त, चिरंजी लाल, बद्री दत्त पाण्डे, चेत राम, मोहन सिंह मेहता सहित दर्जनों ग्रामीण कार्यकर्ता के साथ मिलकर रजिस्टर नदी में बहा दिये। जिन मालगुजारों ने बागेश्वर में अपना कुली– रजिस्टर नहीं बहाया था, उन्होने उसे अपने घरों में नष्ट कर दिया। यह समाचार पूरे क्षेत्र में आग की तरह फैल गया कि कुली बेगार प्रथा समाप्त हो गयी हैं। लेकिन बेगार और जंगलात की नीतियों की अति ने असंगठित विरोध को संगठित जनांदोलन में बदलने में अहम् योगदान दिया।

भारत में समाजवादी आंदोलन – भारत में समाजवाद का लक्ष्य असहाय मानव जाति के बड़े हिस्से पर हो रहे शक्तिशाली अल्पसंख्यक शोषक वर्ग को समाप्त करना था। यह समाज में उनके प्रति अन्याय और असमानता की भावना को दूर करने का प्रयास करना था। भारत में समाजवादी विचारधारा का उदय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हुआ था, जैसा कि एशिया के अन्य देशों में भी हुआ। भारत में समाजवादी आंदोलन सामाजिक–सांस्कृतिक जागरण से जोड़ा जा सकता है क्योंकि भारतीय समाज सुधारकों का सर्वप्रथम प्रयास यही रहा कि लोगों के मन से अंधविश्वास और रूढ़िवादिता जैसे विचारों से उनको मुक्त करना था। समाजवाद एक राजनीतिक आंदोलन हैं जिसकी स्थापना 20वी शताब्दी की शुरूआत में औपनिवेशिक शासन से भारतीय स्वतंत्रता हासिल करने के व्यापक आंदोलन के एक हिस्से के रूप में की गई थी। यह आंदोलन तेजी से लोकप्रिय हुआ क्योंकि इसने जमीदारों, राजसी वर्ग और जमीदारों के खिलाफ भारत के किसानों और मजदूरों के हितों का समर्थन किया।

समाजवाद के मुख्य बिन्दु

1. समाजवाद जनकल्याण को महत्व देता हैं, यह सभी लोगों को राजनैतिक व आर्थिक समानता प्रदान करने के साथ ही वर्ग आधारित शोषण को समाप्त करता हैं।
2. भारतीय समाजवाद,नेहरू व गॉधी के विचारों से प्रेरित समाजवाद हैं गॉधी जी का समाजवाद सत्य, अहिंसा, ट्रस्टीशिप तथा विकेंन्द्रीकरण पर आधारित हैं, जबकि नेहरू का समाजवाद, उदारवाद व आर्दवादी हैं।
3. भारतीय समाजवाद आर्दशवादी नहीं हैं। परंतु विकास व सामाजिक परिवर्तनों का मार्गदर्शक रहा हैं
4. भारतीय समाजवाद मूल समाजवादी भावना को भी समाहित किये हुए हैं। मूल समाजचादी भावना के अतंर्गत नियोजित विकास को बढ़ावा, भूमि सुधार, श्रम कानूनों में सुधार, शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार आदि क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करना हैं।
5. भारत ने विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संशोधित समाजवाद को अपनाया।

निष्कर्ष

उत्तराखण्ड में सामाजिक आंदोलनों में कुली बेगार आंदोलन का खास महत्व हैं। बेगार प्रथा प्राचीन काल से भारतीय समाज मे विद्यमान रही हैं। गढ़वाल के पंवार तथा कुमाऊँ के चंद और गोरखाओं के शासनकाल में बंगारों की संख्या बढ़ती गयी। कुमाऊँ के बेगार आन्दोलन में स्थानीय समाज की सर्वाधिक हिस्सेदारी रही। बेगार आन्दोलन के पहले दौर में सुधारवादी नरमपन्थी सोच का अधिक प्रभाव था। इस दौर में बेगार में सिर्फ संशोधन करने के लिए प्रार्थनाएँ तथा याचनाएँ किये गये। दूसरा दौर विश्वयुद्व से पूर्व प्रारम्भ होकर असहयोग आंदोलन में विलीन हो गया। इस दौर में बेंगार उन्मूलन के लिए प्रत्यक्ष कार्यवाही की गयी।

संदर्भ सूची

1. पाठक शेखर, दास्तान ए हिमालय
2. विशिप हैबर,नैरटिव ऑफ ए जर्नी थ्रू दि अपर प्रॉविन्सेस ऑफ इंडिया,खण्ड 2 1828 पृ 207–08
3. नौटियाल, सुरेश, उत्तराखण्ड एक अध्ययन, आकलन और प्रस्ताव प्रथम संस्करण,1994
4. दृष्टि पत्रिका, जुलाई 2019।